

भारतीय शिक्षा-कम्पनियों के हवाले

□ सुचेता सिंह

वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी दिखने लगे हैं। शिक्षा में वित्त-पोषक संस्था के तौर पर हस्तक्षेप तो एक रूप रहा ही है। दूसरा रूप शिक्षा क्षेत्र को उपभोक्ता की तरह लेने का है - एक संभावना और लाभकारी क्षेत्र। यह टिप्पणी इसी स्थिति को दर्शाती है।

एक जनवरी 1995 से डंकल प्रस्ताव (विश्व व्यापार संगठन) लागू हो गया जिसमें शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवाएं भी व्यापार में शामिल कर ली गई हैं। विश्व व्यापार संगठन ने कालान्तर में इन क्षेत्रों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिये खुलवाने के उद्देश्य से कई प्रावधान किये।

उनमें से एक यह कि विकासशील देशों को अर्थ व्यवस्था में सुधार के लिये सार्वजनिक व जनहित क्षेत्रों में दी जाने वाली सब्सिडी को धीरे धीरे समाप्त करना होगा। इसके लिये डब्ल्यू टी ओ व अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने ढांचागत समायोजन के कार्यक्रम चलाये। दूसरा प्रावधान यह है कि कोई भी सरकार विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत आने वाले विषयों के संदर्भ में देशी व विदेशी कंपनियों के साथ समान व्यवहार करेगी।

फिलहाल 40 से अधिक देशों ने शिक्षा को निजी क्षेत्रों के लिए खोलने की बात कही है। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में डब्ल्यूटीओ व विश्व बैंक के दबाव के चलते सरकार उच्च शिक्षा के क्षेत्र को निजी क्षेत्र को सौंपने की तैयारी कर रही है। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों, स्वायत्त एवं स्वयं वित्त पोषित उच्च शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से इसकी भूमिका पिछले कई सालों से तैयार हो रही है। 1995 से ही सरकार व विश्वविद्यालय अनुदान आयोग शिक्षा संस्थाओं को अपनी आय के स्रोत तलाश करने के लिये कह रहे हैं। विभिन्न तरीकों से सरकारी अनुदान को कम करने की कोशिश की गयी है।

विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का औसतन खर्च 4000 से 5000 (सालाना) के बीच आता है जबकि छात्र से रु. 1000 से 1500 के बीच शुल्क लिया जाता है। अर्थात् सरकारी अनुदान 70 से 80 प्रतिशत तक होता है। अब तक सरकार राजनीतिक कारणों से फीस वृद्धि करने का साहस नहीं कर पा रही थी। लेकिन अत्यधिक दबाव व राष्ट्रहित की अति हद तक अनदेखी करते हुए, सरकार ने जुलाई 2000 से फीस में 4 से 5 गुना तक वृद्धि करने की बात कही है। यद्यपि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित पुनैय्या कमेटी (कमेटी ऑफ एज्यूकेशन

इंस्टीट्यूट ऑफ हायर एज्यूकेशन) व ऑल इंडिया टेक्निकल एज्यूकेशन इंस्टीट्यूट द्वारा गठित डी स्वामीनाथन कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट में कहा है कि सरकार को उच्च शिक्षा को धन मुहैया कराने की अपनी पूर्व नीतियों को जारी रखते हुए महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए।

विश्वविद्यालय स्तर के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की फीस पहले से ही लाखों में है। कैपिटेशन फीस के आधार पर दाखिला पाने की बात सर्वोच्च न्यायालय ने भी स्वीकार की है। शिक्षकों की संख्या व निजी कॉलेजों में उनकी गुणवत्ता से हम सब भलीभांति परिचित हैं क्योंकि वहां उद्देश्य शिक्षा नहीं पैसा होता है।

निश्चित रूप से शिक्षा के क्षेत्र में उदारीकरण की यह प्रक्रिया बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा संचालित स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालयों की स्थापना पर ही रूकेगी। क्योंकि निजीकरण की इस अवधारणा के पीछे यह साजिश है कि धीरे धीरे पैसा लगाने वाली फर्मों के हाथों में यह क्षेत्र आ जाये। इस दौड़ में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां ही आगे रहेंगी। भारत के शिक्षा संस्थान अभी तक सरकार पर निर्भर रहे हैं।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां तो इसी ताक में बैठी हैं कि कब उन्हें इस बाजार से दोहन का मौका मिले और स्वयं को वे वित्त पोषक संस्थाओं के रूप में पेश करें। इस तथ्य की पुष्टि सरकार के इस कथन से भी होती है कि उच्च शिक्षण संस्थाओं को कम्पनियों से सहायता लेनी चाहिए। यह भारत के दो तिहाई लोगों को शिक्षा से दूर रखने की साजिश है ताकि इस अशिक्षित भारत के संसाधनों का खूब दोहन किया जा सके। शिक्षा के निजीकरण से भारतीय शिक्षा संस्थाएं भी समाप्त होने लगेंगी।

पहले से खस्ताहाल भारतीय शिक्षा संस्थाएं फीस बढ़ाने पर भी विदेशी संस्थाओं के मुकाबले टिक नहीं पायेंगी कारण कि पहले से विद्यमान विदेशी आकर्षण इसके आड़े आयेगा। इसके बाद भारतीय शिक्षा संस्थाओं का विनिवेशीकरण करके विदेशी कंपनियों में मिला दिया जायेगा। शिक्षा लेना व देना दोनों ही पैसे का खेल बनकर रह जायेगा। बाजारवाद की यह संस्कृति हमें अपनी मान्यता का इतिहास, भूगोल व संस्कृति पढ़ायेगी। एक

महत्वपूर्ण तथ्य यह भी सामने आ रहा है कि उच्च शिक्षा संस्थाओं में शोध उनके बाजार के सापेक्ष होते हैं। अभी तक प्रवृत्ति कुछ कम है जो भविष्य में अपने घातक रूप में सामने आयेगी। यही कारण है कि कई बार हम शोध निष्कर्षों में विरोधाभास पाते हैं। स्कूलों की अध्ययन सामग्री भी धीरे धीरे इन कंपनियों का विज्ञापन करती नजर आ रही है।

पिछले दिनों छपी एक खबर के मुताबिक पांचों आईआईटी, तीन आईआईएम तथा आईएमसी ने प्रायोजित शोध के रूप में लगभग 18 करोड़ रुपये एकत्रित किये। निजीकरण के बाद कंपनियां सीधे उच्च संस्थाओं को प्रायोजित करेंगी, पूरा प्रशासन एवं पाठ्यक्रम उन्हीं का होगा। तब इन संस्थाओं से निकलने वाली प्रतिभा कितनी भारत में रहेगी जबकि वर्तमान में यह दर लगभग 90 प्रतिशत है।

ऐसी स्थिति में अमेरिका को अपनी व्यवस्था चलाने वाला बौद्धिक वर्ग मिल जायेगा जिसकी वहां बहुत कमी है। भारतीय तकनीकी संस्थानों में 100 अनिवासी भारतीयों को प्रवेश देना होगा जो वहां के दायम दर्जे के छात्र होंगे। उनके स्थान पर हमारे मेधावी छात्र प्रवेश से वंचित रह जाएंगे। पैसे के बल पर गुणवत्ता को खोना आत्मघाती कदम है। 1995 से स्कूल स्तर पर भयंकर विषमता देखने में आयी है। उच्च शिक्षा में भी अनिवासी भारतीयों के माध्यम से बहुत सी विदेशी कम्पनियां अपना रास्ता खोल चुकी है।

विश्वविद्यालय व कम्पनियों का संबंध सांख्यवाहिनो परियोजना के माध्यम से भलीभांति समझ सकते हैं कि वहां की कम्पनियों का उद्देश्य एवं चरित्र क्या है। अमेरिका शिक्षा के निर्यात से कुल निर्यात का पांचवां हिस्सा कमाता है। फ्रांस, जर्मनी व ब्रिटेन भी शिक्षा के बड़े निर्यातक है। 1996 में अमेरिका ने शिक्षा निर्यात से 7 अरब डॉलर कमाये। इसी क्षेत्र में अब अमेरिका की एक प्रसिद्ध यूनिवर्सिटी कंप्यूटर साइंस में एम एस की डिग्री दिल्ली में भी देगी और पैसा कमायेगी। निजीकरण की इस प्रक्रिया में आम आदमी नहीं उद्योगपति केन्द्रित हैं। शिक्षा के निजीकरण व उदारीकरण का जन्मकाल एक ही है जो अहस्तक्षेप की बात करती हैं, पिछले 7 सालों के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि शिक्षा का निजीकरण रोजगार शून्य जैसी स्थिति पैदा कर देगा। धीरे धीरे कंपनियों के कर्मचारी व उद्योग जगत के लोग मुख्यतः शिक्षा लेंगे। विश्व बैंक ने भी 1996 में ही दबी जुबान से इस बात को स्वीकारा था कि उदारीकरण से आर्थिक उलझने, सामाजिक तनाव, बेरोजगारी व विषमता बढ़ेगी। शिक्षा के व्यावसायीकरण से जितनी बचत होगी उससे कहीं ज्यादा राष्ट्र समाज का नुकसान होगा। इससे अपराधों में वृद्धि होगी व सामाजिक जीवन संकट में पड़ जायेगा।

साहित्य, सामाजिक विषयों व मानव विकास में सहायक अन्य विषयों का अध्ययन या तो समाप्त हो जायेगा या फिर उन्हें बाजारोन्नमुखी विषयों में परिवर्तित होना पड़ेगा। आर्थिक रूप में सक्षम न हो पाने के कारण निम्न, मध्यम व गरीब वर्ग शिक्षा से कट जायेगा। अतः कुशलता के मानदंड पर खरे उतरने वाले इन छात्रों का सरकारी संरक्षण सामाजिक समरसता के लिये अनिवार्य है। अगर सरकार शिक्षा जैसे बुनियादी क्षेत्र से स्वयं को हटा रही है तो स्वयं सरकार का भी प्रत्यक्ष रूप से निजीकरण हो जाना चाहिए। (जो अप्रत्यक्ष रूप से पहले ही हो चुका है)। समाजवाद की कथित विफलता के बाद अमेरिकी पूंजीवाद विश्व विजय के लिये यह सब कर रहा है व स्वयं को दीर्घायु बनाने की कोशिश कर रहा है। जहां आज शिक्षा पर कुल बजट का 6 प्रतिशत तक भी खर्च नहीं हो पाता वहां उस पर 10 प्रतिशत करने व साथ ही निजीकरण की बात परस्पर विरोधी व छात्र वर्ग को भुलावे में रखने वाली है। केरल में इसके विरुद्ध हिंसात्मक प्रतिक्रिया हुई थी परंतु कोई विशेष विरोध न होने के कारण सरकार के लिये ऐसा कदम उठाना आसान हो गया। इसका मुख्य कारण दिशाहीन, अपराध ग्रस्त, नौकरी तक सीमित रहने वाला छात्र वर्ग व छात्र आंदोलन है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एजुकेशन (142 देशों के शिक्षकों का संगठन), पब्लिक सर्विसेज इंटरनेशनल (141 देशों के सार्वजनिक क्षेत्र कर्मचारियों का संगठन) और छात्र यूनियन ने भी शिक्षा के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश पर चिंता जतायी है। शिक्षा का निजीकरण विभिन्न समाजों पर एक ही मॉडल को थोपने के उद्देश्य से समरूप चिन्तन व अधिनायकवाद को बढ़ावा देता है। हर देश में शिक्षा विश्लेषणात्मक चिन्तन, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रगति को बढ़ावा देने के लिए होती है।

सरकार का दायित्व है कि वह सरल, सस्ती व सुलभ शिक्षा की व्यवस्था करे। शिक्षा मानवीय गुणों को विकसित करने का साधन है न कि मुनाफा कमाने का। विश्वविद्यालय एक सामाजिक प्रयोगशाला है जो निजीकरण के बाद मात्र मार्केट कल्चर के प्रशिक्षण संस्थान बनकर रह जाएंगे। डब्ल्यू टी ओ मुद्रा कोष व विश्व बैंक के दबाव में भारत सरकार द्वारा पूरी तरह से अतार्किक व अदूरदर्शितापूर्ण निर्णय लिये जा रहे हैं। हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था को न केवल इस उपनिवेशवाद से बचाना होगा बल्कि अंग्रेजी काल की शोषण को पोषित करने वाली इस प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन करने होंगे, जो भारतीय मानस द्वारा निर्धारित किये जाएंगे। ये परिवर्तन पूरी तरह भारतीय आवश्यकता व मान्यता के अनुरूप होंगे। नयी सदी में अपनी राष्ट्रीयता व संस्कृति की डब्ल्यू टी ओ से आत्म रक्षा ही हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। ♦